卐 श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका-परिशीलन 卐

(ले०विद्यावाचस्पति, महामहोपाध्याय, डा० श्रीउमारमणझा एम. ए., न्यायाचार्य, पी. एच. डी., डी. लिट्
प्रवाचक तथा दर्शन विभागाध्यक्ष, श्रीरणबीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ शास्त्रीनगर, जम्मूतवी. १८०००४)

श्रीगौरीतनयं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं शङ्करम् विघ्नेशं वरदायकञ्च कपिलं कार्येषु सिद्धिप्रदम् ।
भक्तानामभयंकरं प्रतिपदं ज्ञानाकरं कीर्तिदम् श्रीविद्यादिविवर्धकं गणपतिं श्रीविघ्नराजं भजे ॥१
तर्के यस्य गतिसदाऽप्रतिहता शास्त्रेषु वाचस्पति र्लब्धो येन हि बालकृष्णसदृशो भाग्येन प्राध्यापकः।
दैव्यां वाचि रतिः प्रसन्नवदनः स्वाचारवद्धादरः स्वामी श्रीयुतपूजितो रघुवरः पायात्स नः स्वर्गतः॥२
सत्ये धर्मसमः सदाक्षितितले मूर्तिर्विवेकाकृतिः गाम्भीर्ये जलधिः क्षमाऽबनिसमाऽसीद्यस्यनैसर्गिकी।
व्याख्या-भाष्य-निबन्धलेखनपटुर्वक्ताविपश्चिद्वरः पूज्यो यो विबुधोऽधुना रघुवरो नाकेऽपि राराजते॥३
मीमांसासु विचारणे कृतमतिः विज्ञेषु बद्धादरो विद्यावान् विनयी नितान्तसरलः ख्यातो जगन्मण्डले।
रामानन्दगुरौ सदानतशिरः काये भृशंकान्तिमान् स्वर्गस्थो विबुधोविभुः रघुवरः पायादपायाच्चिरम्॥४
नत्वा रामञ्च कृष्णञ्च पूज्यं रघुवरं बुधम् । गीतार्थचन्द्रिकाभाष्यं संक्षेपेण विविच्यते ॥५

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के विभूतिस्वरूप महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी का पाण्डित्य विश्वविख्यात है । उनके प्रशिष्य आचारविचारनिष्ठ स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यने अपने परम गुरु की स्मृति में कुछ विद्वानों के निवन्धरूप कुसुमों से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का निश्चय किया है । उनके ही आग्रह से मैं पूज्य आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी की स्मृति में उनके ही गीताभाष्य गीतार्थचन्द्रिका के उपर यथामति विवेचन करता हूँ ।

महामहोपाध्याय श्रीरघुवराचार्यजी ने विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों का गहन अध्ययन करके वेदान्त शास्त्र के सूत्र पर विवृति श्रीरघुवरीयवृत्ति लिखकर विद्वानों के लिए वेदान्त के वचनों को और भी सरल एवं चित्ताकर्षक बना दिया है। वेदान्तशास्त्र के ही प्रतिपादक श्रीमद्भगवद्गीता के ऊपर अर्थचन्द्रिका जैसी टीका का निर्माण करके उन्होंने गीता के सूक्ष्मभावों को भी सरल बनाकर विश्व की जो सेवा की है वह अवर्णनीय है । प्रस्तुत निबन्ध में गीतार्थचन्द्रिका के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है । गीतार्थचन्द्रिका के प्रारम्भ में ही आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने श्रीराम का स्मरण इन शब्दों में किया है—

जगन्नाथोऽनाथावनदृढमतिस्सर्वगतिकः स्वतन्त्रस्सर्वज्ञो निरवधिककल्याणगुणकः ।
विरिञ्चेशानाद्यैरमरपतिभिः स्वर्चितपदः परेशः श्रीरामो विहरतु हृदब्जे मम चिरम् ॥

श्रीराम की स्तुति करके उन्होंने अपने सम्प्रदाय के प्रमुख आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का गुणगान इस प्रकार से किया है—

परैर्वेदान्तार्थे कलुषितपथं प्रापयति यो विशिष्टाद्वैताख्यं प्रथितमतमेतत्प्रकटयन् ।
परप्रत्यग्भेदं श्रुतिशिरसिसिद्धं विशदयन् यती रामानन्दः सहि सुगुणसिन्धुर्विजयते ॥

अपने पूज्य गुरु आचार्यजी के विषय में वे लिखते हैं कि जिनके उपदेश को पाकर मैं मोयारूप समुद्र की आग (दुःख) को जानने में तथा उससे छुटकारा पाने में समर्थ हो सका, वेदान्त के विशिष्ट आनन्दप्रदतत्त्वों को जान सका, जिनकी वाणी मिथ्यावाद (या मायावाद) को

ध्वस्त करने में समर्थ है, उस वेदशास्त्रमर्मज्ञ दया के समुद्र अपने आचार्य को नमस्कार है।१

सभी उपनिषदों के सारभूत गीता के उपर श्रीशङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य तथा अन्यान्यः सम्प्रदायों के विभिन्न विद्वानों ने अपनी विद्वत्ता से परिपूर्ण व्याख्या ग्रन्थों का निर्माण किया है। भगवद्रामानन्दाचार्यकृत आनन्दभाष्यटीका भगवद्गीता के ऊपर एक अच्छा व्याख्याग्रन्थ है। आनन्दभाष्य के ऊपर विद्वच्चक्रचूडामणि विचारनिष्ठ धार्मिक महामहोपाध्याय स्वामी रघुवराचार्य न्यायोपाध्याय मीमांसोपाध्याय, व्याकरणाचार्य, वेदान्तकेसरी सांख्यशास्त्रमर्मज्ञ ने भाष्य लिखते हुए स्वयं ही गीतार्थचन्द्रिका में लिखा है—

सम्यगालोच्य गीताया भाष्यमानन्दसंज्ञकम। कुर्वेऽर्थचन्द्रिकां तस्याष्टीकां तद्भाष्यसम्मताम् ॥

अर्थचन्द्रिका के प्रारम्भ में ही उन्होंने ब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम राम का वर्णन करते हुए लिखा है

अथ दिव्यज्ञानानन्दैकरूपो निरस्तसमस्ताविद्यदोषगन्धस्वाभाविकापरिमितनित्यज्ञानबलैश्वर्यबीर्यतेजश्शक्त्याद्यखिलकल्याणगुणचणोऽप्रमेयाचिन्त्याद्भुतपराक्रमोत्साहसमन्वितातिशयसौकुमार्योदार्यधैर्यमाधुर्यलावण्यकारुण्यसौशील्यसौजन्यवात्सल्याद्यसंख्येयासाधारणगुणगणजलधिद्दृष्टचित्तापहारिशरण्यसत्यसन्धशरणागतवत्सलत्वादिधर्मविशिष्टः प्रचण्डमार्तण्डकोटिकान्तिकमनीयकलेवरो ब्रह्मादिस्थावरान्ताखिलजगदुदयविभवलयलीलो हिरण्यगर्भोग्रेन्द्राद्यखिलदिविषद्वन्द्यपादारविन्दद्वन्द्वः प्रणतकल्पपादपोऽखिललोकलावण्यधामावनितयनार्चितांध्रिपद्मो हनुमत्सुषेणकुमुदांगदादिनित्यसूरिसेवितदिव्यमूर्तिरुभयविभूतिनायकोऽपराजितापरवैकुण्ठपदप्रधानोर्थश्रीसाकेतनिकेतः परमपुरुषनारायणविष्णुवासुदेवादिपदवाच्यः पुरुषोत्तमः श्रीरामः ... चाचिन्तयत्। (गीर्थचन्द्रिका पृ० २।३)

वस्तुतः बाणभट्ट की कादम्बरी जैसे प्रौढगद्य का निर्माण करना आचार्य श्रीरघुवराचार्य के पाण्डित्य का परिचायक है। इस एक ही वाक्य में उन्होंने वेदान्त दर्शन के परब्रह्मरूप राम का और पुराणादिसम्मत सगुण राम का अवतार प्रयोजनसहित वर्णन किया हैं। निःसंदिग्ध आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी किसी सिद्धिविद्या के वल पर या असीम गुरुकृपा के कारण ऐसे पाण्डित्य को प्राप्त कर सके होंगे। इसी वाक्य में उन्होंने कृष्णावतार को भी सामने रख दिया है। अवतार के प्रयोजन की व्याख्या करते हुए आचार्य ने याज्ञवल्क्य (१।८९) बृहद्ब्रह्म संहिता (३.७–२१) भागवत ३।४।२९–३१) तथा अन्यान्य ग्रन्थों के सन्दर्भो को सामने रक्खा है। निर्विशेष परब्रह्म को जानना कठिन है क्योंकि—

निर्विशेषं परम्ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मन्दास्तेनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः ॥

केवल अद्वैतबुद्धि से ही निर्विशेष ब्रह्म प्राप्तिरूप मोक्ष संभव हो संकता है२ इस विषय पर आचार्य ने स्वपक्ष स्थान पूर्वक काफी विवेचन किया है।

इसी प्रसंग में "जीवो ब्रह्मैव नापरः" "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः (गीता १५।७) इस जीव और ब्रह्म के ऐक्य तथा पार्थक्यविषयक चिन्तन भी मुण्डकोपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद्

---

(१) यस्यादेशवशादवेदिषमहं मोहाम्बुधेर्वाडवं वेदान्तस्य विशिष्टतत्त्वगमकं सिद्धान्तमानन्ददम्।
मिथ्यावादविमर्दनेऽतिचतुरा यद्भारती राजते स्वाचार्यं श्रुतिवित्तमं तमनिशं वन्दे दयावारिधिम्॥
(गीतार्थचन्द्रिका श्लोक ३)

(२) एवञ्च करणोपासनयोरन्तः करणनैर्मल्यं विधायैवोपक्षीणत्वात् केवलाद्वैतधियैव निर्विशेष ब्रह्मावाप्तिरूपकैवल्यं प्राप्यते इत्येव गीतातात्पर्यमाहुः तदपेशलम्। गीतार्थचन्द्रिका ८

तथा गीता के उद्धरण पूर्वक आचार्य ने किया है। ईश्वर में पूर्णरूप से समर्पण मोक्ष का अच्छा उपाय है और इसके लिए परा भक्ति उत्तम मार्ग है ।३

व्याख्याकार श्रीरघुवराचार्य ने लिखा है कि प्रत्येक ६ अध्याय मे 'त्रिकद्वय' का समावेश है। प्रथम ६ अध्याय में कर्मभक्ति के साधनरूप कर्मज्ञान योग विचार किया गया है। ६ अध्याय से १२ अध्याय तक ज्ञानयोग और उपासनायोग का प्रदर्शन कर उपासना के स्वरूप पर विचार किया गया है। अन्तिम भाग में अनेक सूक्ष्मतत्वों पर विचार हुआ है ।४

प्रथमश्लोक के उपक्रमण करते हुए आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने अनेकसूक्ष्मतत्त्वों का संकेत किया है जो वही द्रष्टव्य है। अव गीता में प्रतिपादित कुछ तत्त्वों पर विचार करना उचित समझतो हूँ ।

परमतत्त्व एक ही है। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद १.१६४-४६) अर्थात् इन्द्र मित्र वरुण आदि एक ही तत्त्व के अलग-अलग नाम हैं, मूलतः तत्त्व एक ही है। गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान् ने अपना विश्वरूप दिखाकर सबकी एकता का प्रत्यक्षबोध कराया। अन्त में स्वयं ही कहा कि मेरी अनन्य भाव की भक्ति करने से ही सर्वभूतात्मैक्य भाव का प्रत्यक्षबोध हो सकता है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमामता ॥

गीता १२-२

अर्थात् हे अर्जुन ! जो मुमुक्षु भक्त मेरे स्वरूप में मन लगाकर मेरे कर्मादि में सदा लगे हुए परम शुद्ध श्रद्धा से विश्वरूप सर्वज्ञ मुझ परमेश्वर की उपासना करता है, वे श्रेष्ठ योगीहैं।५

वेद में भी कहा गया है कि जो मुमुक्षुजन प्राणायाम धारणपूर्वक सत्यधारक परमात्मा की उपासना श्रद्धापूर्वक करते हैं, वहीं परमात्मज्ञान प्राप्त करके मुक्तिधाम को पाते हैं।६

श्रीरघुवराचार्यने महारथ की व्याख्या करते हुए लिखा है—

इमे परिगणिताः सप्तदशसंख्याकाः शूराः बलेन भीमार्जुनाभ्यां साम्यं दधतोऽपि महारथा एव। अतएव अर्जुनादीनामतिरथत्वेन अत्र महारथेषु परिगणनाभावः।

एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तुधन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः ॥

---

(३) मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसिमे।

गीता १८।६५

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच ॥

गीता १८।६६

इति परभक्तिपराकाष्ठास्वरूपशरणागतिधर्मस्यैवोपादेयत्वमशिषत् (गीतार्थचन्द्रिका पृ. १०)

एवं अत्र परभक्तेरेव साक्षान्मोक्षोपायत्वं निरूपितम्। गीतार्थचन्द्रिका पृ. ११

(४) गीतार्थचन्द्रिका पृ. १२

(५) ये मुमुक्षवों निन्ययुक्ता नित्यं मद्योगमाकांक्षमाणा निरंकुशैश्वर्यशालिनि समस्तचिदचिद्वस्तुशेषिणि परात्परे मयि स्वकीयं मन आवेश्य श्रद्धयोपेता सन्तो मामेवोपासंते ते एवोपासका मम युक्ततमा मतास्ते मामविलम्बेनैव प्राप्नुवन्तीति भावः। गीतार्थचन्द्रिका पृ. ६२३

(६) श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते। श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥

ऋग्वेद १०।१५।४

अभितान्योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु सः। रथस्त्वेकेन यो योद्धा तन्न्यूनोऽर्धरथः स्मृतः॥ गी.च.पृ.२३

इस प्रकार भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा अन्यान्य बीरों के साथ अर्जुन का युद्ध कैसे हो सकता है ऐसा भाव है। अपर्याप्तं तदस्माकम् इत्यादि गीता (१।१०) के श्लोक की व्याख्या करते हुए आचार्य ने स्पष्ट किया है-हे आचार्य भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमारी सेना अपर्याप्त है अर्थात् अपने उद्देश्य की पूर्ति में असमर्थ है और भीमसेन से सुरक्षित इन लोगों की सेना पर्याप्त अर्थात् अपने उद्देश्य की पूर्ति में सर्वथा समर्थ है।

यहाँ पर सात सेनापतियों का नाम गिनाकर उन्हे भीष्म पितामह द्वारा सुरक्षित कहकर अपर्याप्त अर्थात् अपूर्ण कहा गया है। मन की सात भूमिकाओं के सात प्रेरक देवता ही सात सेनापति हैं। अतः सत्यरूप भीष्म द्वारा कामात्मक असत्य का पोषण नहीं हो सकता है। वस्तुतः पाण्डवों के सेनापतियों द्वारा विजय संभव है ऐसा संकेत है। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है।

"एवमस्य श्लोकस्य उपलभ्यमानेभ्यो भाष्यटीकादिभ्योऽस्मदाचार्यभगवत् पादप्रणीतानन्दभाष्यनामकगीताभाष्यमेव युक्तं प्रतीयते इति तदनुसारेणैव मयात्र टीकायां संभवितार्थस्य उल्लेखः कृतः तत्र विदुषां परितोषाय किञ्चिद्विचार्यते—

"तत्तथाभूतैर्वीरैर्युक्तमपि भीष्मेणाभिरक्षितमपि अस्माकं बलं सैन्यमपर्याप्तं तैः सह योद्धुं असमर्थं भाति। इदं तु एतेषां पाण्डवानां बलं भीमेनाभिरक्षितं सत् पर्याप्तं समर्थं भाति भीष्मस्योभयपक्षपातित्वात्" इत्यादि। गीतार्थचन्द्रिका पृ. २७

गीता में विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन उन सब में भी "मोक्ष एव परम पुरुषार्थः" को ध्यान में रख कर उसके उपाय बताये गये हैं। किसी ने कर्म को मुक्ति का साधन माना है तो किसी ने भक्ति को किसी ने ज्ञान को ही मोक्ष का मार्ग माना है। पण्डित प्रवर श्रीरघुवराचार्यजी ने ज्ञान सहित भक्तिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ माना है। लेकिन ज्ञानोदय के लिए अपेक्षित चित्त की शुद्धि में कर्म की सार्थकता को अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। अतएव तटस्थ होकर यही कहना पड़ता है कि आत्म साक्षात्कार के निमित्त कर्म उपासना और ज्ञान तीनों का निरूपण पाया जाता है।

अविद्या और माया के स्वरूप पर भी गीता में विचार किया गया है। अविद्या अथवा माया का निराकरण ज्ञान के द्वारा ही होता है। कुछ आचार्यो ने अविद्या और माया में सूक्ष्म भेद माना है। दोनों में अनिर्वचनीयता, त्रिगुणात्मता और भाव रूपता यें तीन धर्म हैं। परन्तु दार्शनिकों ने इनमें भेद भी स्वीकार किया है। अविद्या व्यष्टि बन्धन है और माया समष्टि बन्धन है, ऐसा कुछ दार्शनिकों का मत है। ज्ञान द्वारा व्यष्टिबन्धन अविद्यो के निवृत्त हो जाने पर समष्टिबन्धन माया के अपसारण के लिए साधक को भक्ति मार्ग का अवलम्बन करके भगवान् को प्रसन्न करना होगा। क्योंकि मायाबन्धन के अपसारण के विना मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए भक्ति के साथ ज्ञान ही मुक्ति का प्रमुख साधन है। गीता में कहा गया है कि—

"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।"

अर्थात् जीवगत अज्ञान ज्ञान के द्वारा नष्ट किया जाता है। यहाँ अज्ञान से जीवगत अविद्या रूप अज्ञान माना गया है। दैवबन्धन रूप माया का अपसारण मात्र भगवद्भक्ति से ही संभव है। अतएव गीता में कहा गया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ ७-१४

अर्थात् मेरी यह त्रिगुणात्मिका माया बड़ी दुस्तर है। लेकिन जो व्यक्ति मेरी शरण में आते हैं, वे इस माया को पार कर लेते हैं, अर्थात् संसार से तर जाते हैं। यहाँ प्रपद्यन्ते का अर्थ प्रपत्ति या शरणागति है । इस श्लोक की व्याख्या आनन्दभाष्य में इस प्रकार है-दैवी लीला प्रवृत्तेन देवेन मया निर्मिता एषा मम माया विचित्रकार्यकारिणी प्रकृतिर्हि दुरत्यया दुरतिक्रमणीया भवति। ये पुरुषाः माँ सर्वेश्वरमेव प्रपद्यन्ते, शरणमाप्नुवन्ति त एवैतां मत्सम्बन्धिनीं मायां तरन्ति । श्रीमद्भगवद्गीता आनन्दभाष्यम् पृ. ४०२ इस सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए श्रीवेदान्त केसरी जी ने लिखा है—

मम सर्वनियन्तुर्ह्येषा निदर्शितस्वरूपा गुणमयी सत्वादिगुणत्रयसमुद्भवा माया यतो दैवी लीलाधिकारस्थितेन स्वतस्तु परमस्वतन्त्रेण मया देवेन निर्मिता विचित्रार्थसृष्टिविलासविधायिनी ततो दुरत्यया अनवाप्तमच्चरणैः दुःखेनाप्यत्येतुमशक्या । एवं देवमायायाः प्राबल्यं दुस्तरत्वञ्चाभिधायेदानीं तस्याः स्वाभिप्रेतं सन्तरणोपायमुपदिशति मामिति ।

अब इस माया चक्र से उद्धार का मार्ग इस प्रकार है—

ये तु श्रद्धालवो मद्विषयकनिरतिशयप्रीतिपवित्रितस्वान्ता मत्प्राप्त्युत्कटानन्यभावनया मामेव सर्वेश्वरं प्रपन्नार्तिहरं दिव्यकारुण्यजलधिं सर्वलोकैकशरण्यं प्रपद्यन्ते मत्प्रपत्तिमायन्ति । प्रपदनेनात्र शरणागतिरेव भगवदभिप्रेता यतस्तस्या एव मायासन्तरणौपयिकत्वंशास्त्ररहस्यवेदिभिर्निश्चितम् ।

इसकी पुष्टि में आचार्यश्रीरघुवराचार्यजी ने पञ्चरात्र से उद्धरण देते हुए लिखा है—

प्राप्तुमिच्छन् परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिञ्चनः । श्रद्धया परया युक्तो हरिं शरणमाश्रयेत् ॥

फिर आगे अन्य उद्धरण देते हैं—

अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् । तदेकोपायता याञ्चा प्रपत्तिः शरणागतिः ॥

यहीं पर शरणागति के लक्षण भी श्रीवेदान्तीजी ने लिखाहै--

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनो गतिः । त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः ॥
शरणागतिरित्युक्त्वा सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ।

अन्य आचार्यों ने भी कहा है—

साधनं भगवत्प्राप्तौ स एवेति मतिर्दृढा । साध्यभक्तिः स्मृतासैव प्रपत्तिरिति गीयते ॥

इस प्रकार भावना पूर्वक शरणागति होती है । जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के ही श्लोक को उद्धृत करते हुए व्याख्याकार ने लिखा है—

अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन् भयावहे । त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष ? न जाने शरणं परम् ॥

महापुरुष निश्चय ही शरणागत की रक्षा करते हैं ऐसे उनके प्रतिज्ञा वाक्य हैं—

आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणागतः । अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्य कृतात्मना ॥

भगवान् शीघ्र ही उनकी रक्षा भी करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

यहाँ सभी भूतों को अभय प्रदान करने की शक्ति के कारण वे ब्रह्मा से तृणपर्यन्त सबके स्वामी भी हैं ऐसा सिद्ध होता है। वे ईश्वर हीं सर्वनियामक हैं ।

वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड से उद्धरण देते हुए वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी ने लिखा है कि सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ आञ्जनेय ने अपने कण्ठस्वर से कहा—

ब्रह्मा स्वयम्भू श्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं नशक्ता युधि रामवध्यम् ॥ ५।५१।४४

वस्तुतः युधि रामवध्यं त्रातुं न शक्ताः, शरणं सम्प्राप्य तु त्रातुं शक्ता इति गम्यते ।

इस प्रकार भगवान् राम में परतत्व का भाव स्पष्ट है । वस्तुतः भगवान् शरणागतवत्सल हैं-

विदितः सहि धर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ।

इसलिए विभीषण ने श्रीरामजी के द्वार पर जाकर कहाथा—

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने । सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥

यहाँ सर्वलोकशरण्याय का अर्थ श्रीरघुवराचार्यजीने इस प्रकार किया है—

सर्वलोकशरण्याय सर्वथानालोचितविद्यावृत्तकुलवित्तायुरादिविशेषाशेषलोकशरण्याय इत्यर्थः । इसी भाव की पुष्टि में गीता में ही भगवान् ने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गी.१८

यहा "मामेव" मुझको ही प्राप्त कर माया का नाश होगा ऐसा कहा गया है अर्थात् अन्य देवताओं के पास झुकने की जरूरत नहीं है—

मामेवेत्येवकारेण देवतान्तरप्रपदनस्य मायासन्तरणरूपमोक्षोपयोगित्वं नास्तीति तद् व्यवच्छिद्यते । (गीतार्थचन्द्रिका पृ.४०५)

ते एव मदाश्रयाः सन्तः सन्ततमेतां मत्सम्बन्धिनीं निरुक्तत्रिगुणमयीं मायामनायासेनैव तरन्ति । मत्सायुज्यं प्राप्नुवन्ति । यहीं पर आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने पराशर के वाक्य का उद्धरण किया है—

यैः स्वधर्मपरैर्नाथ ! नरैराराधितो भवान् । ते तरन्त्यखिलामेतां मायामेतां विमुक्तये ॥वि.पु.५।३०।१६

ये भगवत्प्रपत्तिविरहिणस्ते त्विमां नैव तरन्तीति गम्यते ।

मदाश्रया मदीयेयं माया मदनुकम्पामपहाय अतिदुस्तरेति भगवदाशयः ।

इस प्रकार माया का सन्तरण मुक्ति का साधन है ।

गीता का प्रयोजन केवल विरक्त अर्जुन को उत्साहित करके लड़ाना ही नहीं है। भगवान् कृष्ण, जो अखिल विश्व को अपने अन्दर दिखाते हैं (गी. ११) जो अपने को सव की आत्मा बताते हैं (गी. १०।२०) और जो स्पष्ट कहते हैं कि मुझसे भिन्न संसार में कुछ भी नहीं है (७।७) सव लोगों का महान् ईश्वर में ही हूँ (५।२९) ऐसा कह कर उन्होंने दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया है । अर्जुन के मोह प्रसंग को सामने रखकर भगवान् कृष्ण ने सारे संसार को गीता का यथार्थ उपदेश देकर अनन्त प्रकार के उलझनों को निश्चित रूप से सुलझाने का एक मात्र सत्य एवं श्रेयस्कर उपाय बताया है जिसका अवलम्बन करके प्रत्येक मानव अपने योग्यतानुकूल संसार का व्यवहार यथायोग्य करता हुआ अपना इहलौकिक तथा पारलौकिक निःश्रेयस एक साथ सम्पादन कर सकता है ।

आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने शब्दों की शास्त्रीय व्युत्पत्ति भी उचित ढंग से की है । जैसे गोविन्द शब्द के विषय में हरिवंश का उद्धरण देकर लिखा है—

गौरेषा तु यतो वाणी ताञ्च वेदयते भवान् । गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते प्रभुः॥गी.च.पृ७२
अथवा

नष्टां वै धरणीं पूर्वमविन्दन् वै गुहागताम् । गोविन्द इति तेनाहं देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः ॥

इति स्कान्दोक्तः गोपदबोध्य धरणीधारकः गाः विन्दत इति वा श्रुतिक्षिति गवां रक्षकत्वात् गोविन्दस्तमुक्त्वा वचनेन प्रतिपाद्य तुष्णीं बभूव । गी. च. ७२

गीतार्थचन्द्रिका का विस्तार से विवेचन एक पृथक् शोधकार्य का विषय है। यहाँ हम "स्थाली पुलाकन्यायेन" गीता के १८ अध्यायों के अतिसंक्षिप्त में विचार करते हुए वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी के विशेष चिन्तन पर प्रकाश डालते हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीता का पहला अध्याय 'विषादयोग' नाम से प्रसिद्ध है! अर्जुन अपने गुरुजनों तथा बन्धुबान्धवों को कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर बहुत दुःखी हैं! वह किं कर्त्तव्य विमूढ तथा मोहग्रस्त है। इस अध्याय के प्रारम्भ में आचार्यश्री रघुवराचार्य ने विभिन्न उपनिषद् के वाक्यों का उद्धरण देकर अपने भाष्य के महत्त्व को दर्शाया है। व्याकरण बिषयक कठिनाइयों पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है जैसे युधिष्ठिर शब्द की विवेचना करते हुए लिखा हैं—

युधि संग्रामे स्थिरत्वाद्युधिष्ठिरः 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायामित्यलुक्! गवि युधिभ्यां स्थिरः (पा. ८।३।९५) इति षत्वम् । धृतराष्ट्र के इन आततायी पुत्रों को मारकर भी पाप ही लगेगा। इस स्थल पर आततायियों का लक्षण श्रीरघुवराचार्यजी ने किसी पौराणिक ग्रन्थ से उद्धरण कर लिखा है-

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥
सदा पानरता ये च सदा कामरताश्च ये । सदा द्यूतक्रियासक्ताः सदाऽसद्वचनप्रियाः ॥
सदा पैशून्यसक्ताश्च सदा मांसप्रियाअपि । शास्त्रज्ञा अपि लोकेऽस्मिन् तथैते त्वाततायिनः ॥
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥

इस प्रकार शत्रु एवं आततायियों को मारने में कोई भी दोष नहीं है ऐसा स्पष्टीकरण आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने कर दिया है । उन्होंने लिखा है-शत्रवः सन्त आततायिनोंऽपि सन्ति । अत एतेषां वधे नास्ति दोषलेश इत्याह । (गी.च. पृ. ४८)

गीता के द्वितीय अध्याय में सांख्ययोग पर प्रकाश डाला गया है । मोहग्रस्त अर्जुन कृष्ण के पास अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं । "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।" कहकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया है । तव कृष्ण ने उत्साहपूर्ण वातें कही हैं । इस शरीर की नश्वरता, पुनर्जन्म का होना तथा आत्मा के नित्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। इस अविनाशी नित्य आत्मा को कोई भी नहीं मार सकता है । इसलिए हे अर्जुन ! तुम कर्म करो ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमाते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ (गी. २।४७)

फिर अन्त में भगवान् कृष्ण ने कहा कि सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममत्व और अहंकार से रहित होकर विना इच्छा के विचरता है, वह परम शान्ति को प्राप्त करता है ।

पण्डित प्रवर श्री रघुवराचार्यजी ने लिखा है कि अर्जुन ने स्वयं ही शिष्यत्व स्वीकार कर के भगवान् को आचार्यत्व प्रदान किया है-"शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इति स्वकण्ठवेणैव स्वस्मिन् शिष्यत्वं भगवति आचार्यत्वञ्चाङ्गीकृत्य विशुद्धधर्म जिज्ञासा प्रकटीकृता अर्जुनेन ।
(गी.च. पृ. ५८)

भगवान् शब्द के विषय में टीकाकार ने लिखा है—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥

फिर आगे लिखते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

एवं च—

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्याञ्च सवाच्यो भगवानिति ॥गी.च.पृ.६०

आत्मा की अमरता पर प्रकाशडालते हुए टीकाकार ने सरल शब्दों में लिखा है—

यः पुरुष एनं स्वेतरसमस्तविजातीयस्वरूपस्वभावमात्मानं हन्तारं हननक्रियायाः कर्तारं वेत्त्यहमस्य हन्तेति जानाति । यश्च अन्य पुरुषः एनमुक्तस्वरूपमात्मानं हतं हननक्रियायाः कर्मभूतं प्रत्यक्षेण हतदेहपातेन आत्मानमेव हतमिति मन्यते तावुभौ न विजानीतः । यतोऽयं न कमप्यात्मानं हन्ति न वाऽपरेण हन्यते । (गीतार्थच. पृ. १०३) क्षत्रियों को युद्ध में प्राणत्याग करना श्रेयस्कर है इस विषय में श्रीरघुवराचार्यजी ने काफी प्रकाश डाला है। (पृ.११७ गीता के तृतीय अध्याय में कर्मयोग का उपदेश है। भगवान् ने जीवात्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालकर समत्वबुद्धि के द्वारा अनासक्तियोग पर विचार किया है। तुम हमेशा कर्म करते रहो—"नियतं कुरु कर्मत्वम्" यह इस अध्याय का मूल उपदेश है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अनासक्त भाव से निरन्तर कर्त्तव्य कर्म का आचरण करो क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ भी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। उन्होंने बताया कि प्रकृति के गुणों के कारण कर्म होते हैं लेकिन अहङ्कार से मोहित व्यक्ति "मैं कर्ता हूँ" ऐसा मानता है। अपने धर्म के आचरण को करता हुआ मर जाना भी श्रेयस्कर है। लेकिन दूसरे के धर्मको स्वीकार करना भयावह है। इस प्रकार कर्मयोग नामक इस अध्याय में वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी ने कर्म के विषय में सूक्ष्म विचार किया है। ईशावास्योपनिषद् के उद्धरण—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" देकर कर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला है। (अर्थ चन्द्रिका पृ. १९६) मनुस्मृति में भी कहा गया है—

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः । तद्धि कुर्वन् यथा शक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥
(गीतार्थचन्द्रिका पृ. १९६)

चतुर्थ अध्याय में भगवान् कृष्ण ने ज्ञानकर्मसंन्यासयोग पर प्रकाश डाला है। अर्जुन को रहस्यमय उपदेश देने से पूर्व कृष्ण ने कहा कि तेरे और मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। तुम उन सबको नहीं जानते हो परन्तु मैं जानता हूँ। भगवान् ने अवतार का प्रयोजन बताते हुए कहा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ (गी.४।७)

आगे कृष्ण ने कहा कि मुझे जो जैसा देखता भजता है मैं भी उसको उसी प्रकार भजता हूं। इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग का अनुसरण करते हैं। कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर नित्यतृप्त व्यक्ति कर्मों में रत होकर भी कर्म नहीं करता। भगवान् ने कहा हे अर्जुन! तत्त्वज्ञानी पुरुषों से नम्रता पूर्वक प्रणाम करके निष्कपट भावसे सेवापूर्वक तथा सरलभाव से प्रश्न करके जानो। फिर ज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । अर्थात् ज्ञानाग्नि के द्वारा सभी कर्म भस्म हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान के द्वारा कर्म का नाश होता है। ज्ञान से ही परम शान्ति मिलती है।

श्रीरघुवराचार्यजी ने यदा यदा हि धर्मस्य की व्याख्या करते हुए वृहदारण्यकोपनिषद् , तथा भागवत के सन्दर्भों को सामने रख कर विवेचन किया है—

नारायणपरो धर्मः स च भागवतो मतः । ज्ञानपूर्वः संभवति जीवानां मोक्षदायकः ॥

एवञ्च—

यस्तु विष्णुपरो धर्मो यो वै नारायणेरितः । येन विष्णुरमेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।
स एव परमो धर्मः प्रसादमधिगच्छति । गी.च. पृ. २५०

साधु का लक्षण बताते हुए टीकाकार ने भागवत का सन्दर्भ सामने रक्खा है—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् । अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् । मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनवान्धवाः ॥
मदाश्रयाः कथामृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च । तपन्ति विविधास्तापानैतान्मद्‌गतचेतसः ॥
ते एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः । भा. ३।२५ (गीतार्थच० २५२)

ज्ञान ग्रहण करने के लिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि तुम नमस्कार करके झुक कर, सरल प्रश्न करके सेवा पूर्वक तत्त्व को समझो तभी तत्त्वज्ञानी तुझे उपदेश देंगे (गी. ४.३४) इसकी व्याख्या करते हुए श्रीरघुवराचार्यजी ने भागवत से—

ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत । भा. १.८

आचार्य देवो भव (तै०) आचार्यवान् पुरुषो वेद(छा०) एवं "यस्य देवे परागक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ (श्वै० ६।२३)

दण्डवत्प्रणमेद् भूमौ निर्लज्जो गुरुसन्निधौ । शरीरमर्थं प्राणञ्च सद्‌गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥(गी.च.पृ.२८७)

ज्ञान से कर्मों का क्षय होता है इस प्रसंग में व्याख्याकार ने लिखा है—

हे अर्जुन ? यथा प्रदीप्तोऽग्निरेकाक्येव सपदि सर्वाण्येधांसि अनन्तकाष्ठकूटानि निरवशेषं भस्मसात् कुरुते तथैव अयं ज्ञानरूपोऽग्निः सर्वकर्माणि प्रारब्धेतराणि भस्मसात् कुरुते । (गी.च.२९०)

गीता के पाँचवें अध्याय में कर्म संन्यास योग पर विचार किया गया है। कर्मज्ञान के संयोग से ही संन्यास का रूप लेकर परम पवित्र अर्थात् जन्ममरण के कारणत्व को त्यागा जा सकता है। वस्तुतः जो न किसी से द्वेष और न किसी से आकांक्षा करता है वह संन्यासी सदा जानने योग्य है। क्योंकि वह बन्धन से मुक्त हो जाता है । निष्काम कर्म से युक्त जीवात्मा आत्मा से ही विशुद्ध होकर परमात्मा का अनुभव करता है। योगी कर्म के फलों को त्याग करभगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है और कर्मफल को चाहने वाला बन्धन में फंसता है। पण्डित समदर्शी होते हैं अन्त में कृष्ण ने कहा—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ ५।२९

इस अध्याय में अर्थचन्द्रिकाकार जी ने समुचित व्याख्या करते हुए अन्त में इस श्लोक के विषय में कहा है—

प्रोक्तयोगयुक्तो नरो मां यज्ञतपसां भोक्तारं यज्ञदानतपोभिः समाराध्यं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वेषां ब्रह्मरुद्रेन्द्रादीनां लोकानां महेश्वरं महासमर्थं नियन्तारं, पतिं पतीनां परमं महेश्वरम् (श्वे०) इति श्रुतेः। ब्रह्मादिपिपीलिकान्तानां स्वशरीरभूतानां सुहृत् इति ज्ञात्वा शान्तिमृच्छति नित्यसुखरूपां शान्ति

माप्नोति। गी.च. ३३० गीता के छठे अध्याय में आत्मसंयम योग है। शङ्कराचार्य ने इस अध्याय का नाम "ध्यान योग" रक्खा है। आनन्दभाष्यकार ने इस अध्याय का नाम "अभ्यासयोग" कहा है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है-हे अर्जुन! जो पुरुष कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य अर्थात् यज्ञ, तप, दान आदि शुभ कर्मों का यथाविधि अनुष्ठान करता है वह संन्यासी है और वही योगी है। गृहस्थी में रहकर भी साधन के द्वारा मनुष्य संन्यासी और योगी हो सकता है। अपना उद्धार मनुष्य स्वयं ही करे। आत्मा ही अपना बन्धु है और आत्मा ही शत्रु अगर आत्मा के द्वारा मन और इन्द्रियों को जीत लिया जाता है तो वह आत्मा मित्र या बन्धु है। जो जीवात्मा मन सहित इन्द्रियों और शरीर को नहीं जीत सकता वह आप ही अपना शत्रु है। अन्त में कहा गया है कि सम्पूर्ण निष्काम कर्म करते हुए योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मुझ में लगे हुए अन्तरात्मा से निरन्तर मेरा भजन करता है, वह मुझे परम श्रेष्ठतया मान्य है। इस अध्याय की बिवेचना में भी आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने अपनी विद्वत्ता पूर्ण व्याख्या की है। अन्त में उन्होंने लिखा है-यो योगी मां सर्वेश्वरंमद्गतेन प्रीत्याधिक्यान्मदेकप्रवणेनान्तरात्मना मनसा श्रद्धावान् मत्प्राप्तिविषयकत्वरावान् सन् मामोखिलदोषप्रतिभटानन्तकल्याणगुणोदधिं भजत उपास्ते। स सर्वेषां योगिनां सर्वेभ्यो प्रागभिहितेभ्यो मे मम युक्ततमः श्रेष्ठतमो मतोऽभिमतः। (गी.च. ३८१)

गीता के सप्तम अध्याय 'विज्ञानयोग' है। इस अध्याय में व्याख्याकार ने 'अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" गी. ७।६) की व्याख्या में-'यस्य पृथिवी शरीरम्' (वृ.३।८।२२) यस्य विज्ञानं शरीरम् (वृ. ३।८।३) जगत्सर्वं शरीरन्ते (वा. रा. यु.), सरित्समुद्राश्च हरेः शरीरम् (भाग.) इत्याद्यास्ताः प्रकृति पुरुषयोः महापुरुषस्य शरीरत्वमुपदिशन्ति।

परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः। विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते॥ (वि.पु. ६।४।३१)

इत्यादि उद्धरण देकर सर्वोत्कृष्ट व्याख्या की है। अक्षर ब्रह्मयोग नामक अष्टम अध्याय में व्याख्याकार श्रीरघुवराचार्यजीने—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। (गी.च.४९२) की व्याख्या विस्तार से की है। फिर गीता के—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥(गी.९।२२)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है—

नास्ति मदन्य उपासनालम्बनः फलविशेषो वा येषां तेऽनन्या मय्येव निविष्टहृदया मामखिलहेयप्रत्यनीकादिव्यकल्याणगुणाकरं परात्परं चिन्तयन्तः स्वकीयध्यानविषयीकुर्वन्तो मनोवाक् कायैः सर्वकालमुपासते... (गीतार्थच. पृ. ५१२)

दशम अध्याय के "न मे विदुः सुरगणाः" (गिता १०।२) की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि देवानां महर्षीणां च सर्वशः सर्वप्रकारेणादिकारणभूतः सर्वस्य अहमेव श्रष्टा। अतो मत्कार्यभूतैर्देवर्षिमनुष्यैः अहं कारणभूतो न कथमपि ज्ञानविषयः इति भावः (गीतार्थच. पृ. ५३५)

ग्यारहवें अध्याय के—

पश्यामि देवाँस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ (गीता ११।१५)

इस श्लोक की व्याख्या में—

विष्णुं समाश्रितो ब्रह्मा ब्रह्मणोङ्कगतो हरः। हरस्याङ्गविशेषेषु देवाः सर्वेऽपि संस्थिताः ॥(पद्मपुराण) जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्। इत्यादि उद्धरणपूर्वक विवेचन किया है। गीतार्थच.५७६)

गीता के वारहवा अध्याय 'भक्तियोग' है। इस अध्याय की व्याख्या करते हुए लिखा है कि परमश्रद्धापूर्वक एकाग्रचित से भगवद्ध्यान करनेवाला उत्तम है।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। (गि.च.६४७) की व्याख्या भी बड़ी अच्छी है।

गिता के त्रयोदश अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ पर काफी विवेचन है। आनन्दभाष्यकार तथा अर्थचन्द्रिकाकार ने युक्ति तथा शास्त्र पूर्वक सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादन किया है।

गीता के चौदहवा अध्याय "गुणत्रयविभागयोग' है। अर्थ चन्द्रिका कारने इसकी व्याख्या अन्यसभी टीकाकारों के अपेक्षा अतिउत्तम की है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥(गिता. १५।१७) की व्याख्या में—

यः सर्वभूतान्तरात्मा (रा. उ. ता.) यः परमात्मा (रा उ. ६) य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय। (श्वे० ६।१७) इत्यादि प्रवलशास्त्र प्रमाणों द्वारा पुरुषोत्तमयोग नामक इस अध्याय का विवेचन बहुत ही समुचित ढंग से हुआ है। (द्रष्टव्यगीतार्थच० ७४७)

दैवासुरसंपद्विभागयोग नामक अध्याय में आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने दैवी सम्पत् और आसुरी सम्पत् पर विचार किया है। आसुरी भाव वाले पुनः पुनः जन्म बन्धन में पड़ते हैं एवं दैवी सम्पत् वाला व्यक्ति परमगति को प्राप्त करता है। जो वहीं विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

गीता का सत्रहवां अध्याय "श्रद्धात्रय विभागयोग" है। इसमें सात्विकी राजसी एवं तामसी श्रद्धा पर विचार किया गया है। इस अध्याय के श्रीरघुवरीटीका ने विषय विवेचन में चार चांद लगा दिये हैं जो वहीं द्रष्टव्य है।

गीता का अन्तिम अध्याय "मोक्ष संन्यास योग" है। गीता का अन्तिम अध्याय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आचार्यप्रवर श्रीरघुवराचार्यजी ने इस अध्याय के विभिन्न श्लोकों का विवेचन सुन्दर ढङ्ग से किया है। श्रीरघुवरी टीकाकारने—

"सर्व कर्म फलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।" (गी. १८.२) की वड़ी सुन्दर व्याख्या की है—

विचक्षणाः कर्मयोगनिष्णातास्तु सर्वकर्मफलत्यागं सर्वेषां नित्य नैमित्तिककाम्यकर्मणां फलस्य त्यागं सर्वाणि कर्माण्यनुतिष्ठन्नपि भगवदाज्ञयैव केवलं कर्मानुतिष्ठामि नास्य कर्मणः फलमाकांक्षे इति भावनया फलपरित्यागः तमेव त्यागपदार्थं प्राहुः। (गी.च. ८०९)

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ गी.१८।६१)

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

हे अजुन! ईश्वरः सर्वैश्वर्यशाली सर्वनियामकः परमात्मा श्रीरामः यन्त्रारूढानि करणकलेवर-समुदायरूपे प्राकृते यन्त्रवद्यन्त्र आरूढानि सर्वभूतानि सत्वादिगुणमय्या प्राकृतकार्यजनन्या स्वाश्रिततया मायया भ्रामयन् सर्वकर्मसु प्रवर्तयन् सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति। (गीतार्थ च. पृ. ८७८)

इस प्रकार गीतार्थचन्द्रिका–श्रीरघुवरीटीका गीता के ऊपर अद्‌भुत प्रकाश डालती है। विविध-शास्त्रों के ज्ञाता पण्डितप्रकाण्ड महामहोपाध्याय श्रीरघुवराचार्यजी का योगदान निश्चय ही श्लाघनीय है। इस टीका से राम और कृष्ण का ऐक्यभाव भी स्पष्ट हो जाता है।

अपनी व्याख्या के प्रसंग में याज्ञवल्क्य स्मृति, वृहद् ब्रह्म संहिता, भागवत, श्वेताश्वतरोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् छान्दोग्योपनिषद् महाभारत, बराहपुराण, पाणिनिसूत्र, जैमिनिसूत्र, धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, विष्णुपुराण, वृहद्‌ब्रह्म संहिता, वायुपुराण, यजुर्वेद, मनुस्मृति, श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमाला, आनन्दभाष्य सांख्यकारिका, काठकसंहिता, ईशावास्योपनिषद्, पञ्चरात्र, वाल्मीकि रामायण, वेदान्तचिन्तामणि, वाल्मीकिसंहिता तैत्तिरीयोपनिषद् महोपनिषद् तथैव योगसूत्र मानवधर्मशास्त्र वसिष्ठस्मृति पद्मपुराण एवं पूर्वाचर्यों तथा अन्यान्य शास्त्रीयग्रन्थों के उद्धरण के साथ जगद्‌गुरु श्रीरानानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी ने विषय की पुष्टि की है। वस्तुतः आनन्दभाष्य के ऊपर गीतार्थचन्द्रिका अपूर्व व्याख्या ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के अन्त में श्रीरघुवराचार्यजी ने लिखा है—

यो भक्तिवर्त्मसुखदं परिपातुकामस्त्रय्यन्तसारमवनौ प्रथयाञ्चकार।
गीतात्मकं निजजनोद्धरणैकबीजं, तस्मै नमो भगवते मधुसूदनाय ॥

इति श्रीभगवद्रामानन्दान्वयप्रतिष्ठितश्रीमदनुभवानन्दस्वामिद्वारकेण सर्वतन्त्रस्वतन्त्रेण जगद्विजयिना महामहोपाध्याय ब्रह्मवित्स्वामि श्रीरघुवराचार्येण विरचितायां श्रीमद्‌भगवद्‌गीतार्थचन्द्रिका टीकायामष्टादशोऽध्यायः।

इस प्रकार गीतार्थचन्द्रिका के प्रकाशन से गीता के गभीरविषयों पर प्रकाश पडा है अतः जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्री रघुवराचार्यजी इस अथक प्रयास के कारण स्तुत्य एवं वन्दनीय हैं।

यतिश्रेष्ठाय विज्ञाय श्रीमद्रघुवराय ते। समर्प्यतेऽत्र वाक्पुष्पमुमारमणशर्मणा ॥

卐

ज्ञान तत्त्व विचार

(भाग १)

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

चार्वाक दर्शन

"चैतन्य विशिष्ट देहैव आत्मा"

चैतन्य हमारे शरीर (भूत चतुष्टय=पृथिबी–अप–तेज·वायु) का ही गुण विशेष है। चैतन्य युक्त शरीर का ही नाम आत्मा है। आत्मा और शरीर में तादाम्य है। मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं लम्बा हूँ, मैं कालो हूँ, मैं काना हूँ आदि व्यवहार और अनुभूति से शरीर ही चेतन एवं ज्ञान है। चैतन्य की उत्पत्ति भौतिक तत्त्वों से होती है–'किण्वादिभ्यः मदशक्तिवत्।" शरीर में चैतन्य गुण का अविर्भाव होता है। आत्मा नामक कोई चेतन पदार्थ नहीं हैं। चैतन्य आकस्मिक गुण है।